पुस्तक समीक्षा

मेरी ग्रामीण शाला की डायरी

भूपेन्द्र सिंह*
रीना सिंह**

पुस्तक का नाम	:	*मेरी ग्रामीण शाला की डायरी*
लेखक का नाम	:	जूलिया वेबर गॉर्डन
अनुवादक	:	पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
अनुवाद का प्रकाशन वर्ष	:	2010
मूल्य	:	150 रुपये

यह पुस्तक जूलिया वेबर गॉर्डन के उन अनुभवों की लिखित अभिव्यक्ति है, जो उन्होंने स्टोनी ग्रोव की ग्रामीण एकल शिक्षक शाला में अध्यापन के दौरान प्राप्त किए। 1930 में लिखी गई और 1946 में प्रकाशित यह पुस्तक शिक्षक के उस हुनर को बयाँ करती है कि सीमित मानव संसाधन और अवसरों का सदुपयोग करके भी एक शिक्षक क्या कुछ कर सकता है। यह पुस्तक इस बात की ओर संकेत करती है कि गरीब समुदाय के बच्चों के लिए अभावग्रस्त माहौल में एक कमरे में संचालित होने वाली पाठशाला भी नई और बदलती तकनीक के माध्यम से परिवर्तन की सीढ़ियाँ चढ़ने में सफल हो सकती है। उसके लिए दृढ़ निश्चय और धैर्य के साथ काम करने की आवश्यकता है। चार वर्षों में अध्यापन के दौरान हुए अनुभवों को लेखिका ने यही सोचकर लिखना प्रारंभ किया होगा कि आने वाली पीढ़ियाँ इससे लाभ ले सकें और रचनात्मक तरीकों को अपने अध्ययन और अध्यापन में शामिल कर सकें।

वेबर की यह पुस्तक अनुभवों की ऐसी कहानी प्रतीत होती है, जो आपके अंतर्मन से निकलकर आपके दृष्टिपटल पर घटित हो रही हो। अक्षमताओं से ग्रसित, पूर्वाग्रहों के शिकार, भावनात्मक रूप से असंतुलित गरीब बच्चों, जिनकी वृद्धि और विकास अवरुद्ध हो गया है, को पढ़ाते समय लेखिका ने कभी 'बच्चों की गुणवत्ता' को लेकर कोई शिकायत नहीं की, बल्कि अपने धैर्य की सीमाओं को लाँघकर, उन्होंने अध्यापन में ऐसी सामग्री को शामिल करने का प्रयास किया, जिसे या तो स्वयं से बनाया जा सकता था अथवा किसी से उधार लेकर उपयोग किया जा सकता था। सीखने और सिखाने का सबसे श्रेष्ठ नियम यही है कि स्वयं करके सीखना। लेखिका के लिए सबसे विषम परिस्थिति यह रही कि उनके

*उप-प्राचार्य, रामस्वरूप अग्रवाल शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मंडावर (दौसा) 321609
**असिस्टेंट प्रोफेसर, रामस्वरूप अग्रवाल शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मंडावर (दौसा) 321609

पास पूर्व-प्राथमिक कक्षा से लेकर कक्षा आठ तक के विभिन्न आयु वर्ग के बच्चे तो थे ही, साथ ही कई बच्चे दिव्यांग भी थे, जिनके कारण लेखिका को समायोजन करने में कौन-कौन-सी सुरक्षा युक्तियाँ उपयोग करनी पड़ी होंगी, इसका अनुमान लगाना दुनियाभर के मनोवैज्ञानिकों के लिए चुनौतीपूर्ण है। विविध आयु वर्ग व कुंठाग्रस्त विद्यार्थी समूह को एकत्रित कर शिक्षित करना लेखिका के लिए निश्चित तौर पर चुनौतीपूर्ण था।

लेखिका के विचार में आज संपूर्ण विश्व में विशालकाय स्कूली कारखाने बना दिए गए हैं और उनमें मशीन रूपी मानव तैयार किए जा रहे हैं, लेकिन बच्चे की स्वयं की क्षमताओं का विकास अवरुद्ध होने लगा है। वेबर की पाठशाला 'सीखने की प्रयोगशाला (learning laboratory)' से कम नहीं थी, जहाँ स्वयं सीखने की सामग्री का निर्माण करने और उससे अन्य बच्चों के द्वारा अवसरों का लाभ प्राप्त करने की जुगलबंदी देखी जा सकती थी। जॉन डीवी ने विद्यालय को बिना सोचे-समझे ही लघु समाज की संज्ञा नहीं दी होगी। संभवतः उन्हें वेबर जैसी पाठशालाओं को देखने का अनुभव तो हुआ ही होगा। जब पाठशाला में किसी एक समुदाय के विद्यार्थी हों तो सीखने वाले और सिखाने वाले की विचारधाराओं में वैचारिक, सामाजिक, भाषिक और आर्थिक समानता देखी जा सकती है, जैसा कि वेबर की पाठशाला में थी।

लेखिका ने चार वर्ष के दौरान शिक्षिका के रूप में होने वाले अपने अनुभवों को एक दैनिक डायरी के रूप में लिखा। लेखिका का अनुभव ही था, जो इस बात का पक्ष लेता है कि शिक्षा जीवन की गुणवत्ता में एक हद तक सुधार लाने का कार्य करती है। लेकिन ये सुधार पुराने तौर-तरीकों से नहीं लाए जा सकते, क्योंकि सीखने वाले और सिखाने वाले को किताबी ज्ञान से कुछ अधिक की आवश्यकता है। इससे पहले शिक्षक होने के नाते हमें यह भी समझना होगा कि बच्चों की आवश्यकताएँ क्या हैं?, उन आवश्यकताओं को पूरा करने के तरीके क्या हैं? इसके जवाब में लेखिका लिखती हैं कि हमें बच्चों की रुचियों को जानना होगा, हमारे आस-पास मौजूद संसाधनों का उपयोग करना सिखाना होगा और जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ पूरक साधन जुटाने के तरीके भी सिखाने होंगे। इससे बच्चों में समग्र व्यक्तित्व का विकास तो होगा। साथ ही, वे अनिश्चित नजर आने वाली दुनिया की चुनौतियों का रचनात्मक तरीकों से सामना कर पाने में भी सक्षम हो सकेंगे। लेखिका लिखती हैं कि बच्चों को जानने से पहले स्वयं शिक्षक को लोकतांत्रिक और रचनात्मक विचारधारा वाला होना ही चाहिए। लेखिका ने स्टोनी ग्रोव के वातावरण को देखकर उनके अंतर्मन में मौजूद शिक्षक ने यह निश्चय तो कर ही लिया कि उपयुक्त वातावरण यही है, जो बच्चों के पढ़ने के लिए उपयुक्त होगा, जैसे— एक छोटे बच्चे को अपने खिलौने से अटूट प्रेम होता है, वैसी ही प्रतिक्रिया लेखिका को स्टोनी ग्रोव की उस ग्रामीण शाला में धूल फाँक रही किताबों से हुई। भले ही, उनमें से कुछ फटी हुई थीं, तो कुछ कभी न काम आने वाली, लेकिन उन्होंने उन पुस्तकों को भी इस उम्मीद के साथ सहेज कर रखा, पता नहीं वह पुस्तकें सीखने-सिखाने में महत्वपूर्ण साबित हो जाएँ।

प्रत्येक कार्य के पीछे कोई तो प्रेरणा काम करती ही है, चाहे वह आतंरिक हो अथवा बाह्य। संभवतः यही कार्य लेखिका के लिए फैनी डन्न और मार्सिया एवरेट द्वारा लिखित पुस्तक 'फोर इयर्स इन अ कंट्री'

स्कूल ने किया, जिसे उन्होंने कई बार पढ़ा। लेखिका ने अपने निवास से स्टोनी ग्रोव स्थित अपनी पाठशाला की ग्यारह मील की दूरी हर दिन इस योजना के साथ तय की, क्योंकि वे रोज बच्चों को यह बताना चाहती थीं कि खुद को उनके बीच पाकर वे कितनी खुश हैं। लेखिका की रोजमर्रा की जिंदगी चीजों को नए तरीकों से सोचने और उन सोचे गए तरीकों से कार्य करने में व्यतीत हुई। वे बच्चों से अपनी ही शाला के चित्र बनाने को कहती थीं और बच्चों को अपनी इच्छा से उस चित्र में बदलाव करने के लिए प्रेरित करती थीं। इस प्रक्रिया से वह यह जानना चाहती थीं कि बच्चे कितने कल्पनाशील हैं और उनकी रचनात्मक क्षमताएँ किस हद तक जा सकती हैं। लेखिका का यह प्रयास रहता था कि बच्चे स्वयं समस्या सुझाएँ, साथ ही उसका समाधान भी करें। ऐसा करने से बच्चों में सीखने की चाह उत्पन्न की जा सकती है। लेखिका लिखती हैं कि कई बार बच्चों की सोच का दायरा किसी परिपक्व मस्तिष्क से भी परे हो सकता है। एक बार उनकी शाला के दो बच्चों ने काँच की बोतल में चींटियों की बांबी लाने की इच्छा जाहिर की। इस पर जब लेखिका ने कारण जानना चाहा तो उनका उत्तर था कि वे ये देखना चाहते हैं कि चींटियाँ शीत-निद्रा (hibernation) करती हैं या नहीं। लेखिका बच्चों को प्राकृतिक परिवेश में पढ़ाने के हर संभव तरीके उपयोग में लाने का प्रयास करती थीं। लेखिका का आत्मविश्वास इस बात को लेकर बेहद दृढ़ था कि हर दिन बच्चों को यह लगना ही चाहिए कि उन्होंने आज सच में कुछ हासिल किया और जो समय उन्होंने पाठशाला में व्यतीत किया उसमें उन्हें आनंद आया। तभी तो उनमें अगले दिन लौटकर आने की चाह उत्पन्न होगी और यह तभी संभव होगा, जब बच्चों को प्रत्येक कार्य में भागीदारी मिले और सिखाने वाले के रूप में वे आत्मविश्वास के साथ अपने एक दोस्त को ढूँढ़ पाने में सफल हो सकें।

पाठशाला की कुर्सी-मेजों को व्यवस्थित करने से लेकर आठों स्तर के बच्चों को पढ़ाने के भिन्न-भिन्न वर्णित और अवर्णित तरीके लेखिका ने कैसे उपयोग में लिए होंगे, इसके लिए पाठक को भी अतीत के अस्सी दशक पीछे जाकर सोच सकने की क्षमता वाली कुशाग्र बुद्धि चाहिए। अनुवादक द्वारा पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करते समय सार्थक शब्दों का चयन किया गया, जो प्रशंसनीय है।

बच्चे तब अधिक सीखते हैं, जब वे चीजों को देख सकते हैं और उन्हें अपने जीवन से जोड़ते हैं, बजाय इसके कि वे उन चीजों के बारे में अमूर्त रूप से विचार करते हैं। लेखिका लिखती हैं कि दुनियाभर की किताबों में भरे समस्त नियम और सिद्धांतों को जाँचने का सही तरीका तो यही है कि स्वयं उनका अनुभव कर लिया जाए। बच्चे किताबों से बाहर वे भी सीख लेते हैं, जो इन लिखित नियमों और सिद्धांतों की सीमाओं में भी नहीं सीख पाते। संभवतः जलीय जीवों ने तैरना, पक्षियों ने उड़ना और मधुमक्खियों ने शहद बनाना किसी नियम और सिद्धांत के अनुसार तो सीखा नहीं होगा, बल्कि उन्हें देखकर अवश्य ही नियम और सिद्धांत बनाए गए होंगे। लेखिका लिखती हैं कि जहाँ कहानीकार अपने मस्तिष्क में ढेर सारी रचनाओं के माध्यम से विभिन्न अमूर्त तर्कों के पुल बनाकर कहानी कहने और लिखने का प्रयास करता है। वहीं मनोवैज्ञानिक केवल कहानी के पात्रों के व्यवहार, परिवेश और परिस्थितियों आदि के आधार पर विश्लेषण करके निष्कर्ष प्रस्तुत कर देता है, लेकिन एक शिक्षक, इन दोनों के नजरिए से

बिल्कुल अलग उस कहानी को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करके बच्चों की समझ और रचनात्मकता को बढ़ाने का प्रयास करता है ताकि उनमें बहु-आयामी अलग सोच विकसित की जा सके। लेखिका अक्सर बच्चों को अभिनय का अभ्यास कराती थीं, ताकि उनमें संवादों का अनुसरण करने, पात्रों के व्यक्तित्व को समझने और स्वयं के व्यक्तित्व का निर्माण करने की क्षमताएँ विकसित की जा सकें।

लेखिका लिखती हैं कि कहानी कहने के लिए सभी स्थान उपयुक्त नहीं हो सकते। परीकथाओं के लिए हरा-भरा बगीचा, शौर्यगाथाओं के लिए ऐतिहासिक किले अथवा महल, डरावनी कहानियों के लिए पुराने खंडहर और वैज्ञानिक आविष्कारक कहानियों के लिए विज्ञान प्रयोगशालाएँ अथवा प्लेनेटेरियम उपयुक्त स्थान हो सकते हैं। कहानी के श्रोताओं को स्वयं में कहानी के घटित होने का आभास होना ही चाहिए, ताकि वह कहानी के वास्तविक उद्देश्य और उसके सटीक निष्कर्ष तक पहुँचकर विश्लेषणात्मक क्षमताएँ विकसित करने के योग्य हो सकें। लेखिका लिखती हैं कि एक शिक्षक होने के नाते बच्चों को सिखाते समय कुछ सामाजिक लक्ष्य भी हमें निर्धारित कर लेने चाहिए, ताकि बच्चों को यह बताया जा सके कि उन्हें कैसा समाज चाहिए और वे इस बारे में क्या सोचते हैं कि एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उनका खुद का जीवन कैसा होना चाहिए, वे क्या परिवर्तन करना चाहते हैं और उस परिवर्तन के क्या परिणाम हो सकते हैं। बच्चों की कल्पनाशक्ति बड़ों से बेहतर होती है।

लेखिका का मत है कि चाहे खेल-खेल में या कक्षा में पढ़ाई करते समय बच्चों को स्वयं निर्णय करने दीजिए कि क्या सही है और क्या गलत। भले ही शुरुआत में बच्चे गलत निर्णय करें अथवा निर्णय अपने ही पक्ष में लें, लेकिन समूह में होने वाले विरोध उन्हें अपने निर्णय को बदलने और सही निर्णय करने के लिए अवश्य ही बाध्य कर देंगे। उन्हें सामाजिक व व्यावहारिक स्तर पर सोचने को विवश करेंगे। स्वस्थ शैक्षणिक अनुभव का मर्मस्थल उस अनुभव को प्राप्त होने से पूर्व किए जाने वाले कार्य में निहित होता है। इसका अनुसरण लेखिका ने अपने दैनिक अध्यापन के दौरान किया। उन्होंने अपनी शाला में पढ़ने वाले प्रत्येक बच्चे को स्वयं से सोचने और स्वयं ही उस सोची गई स्थिति, क्रिया अथवा उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए प्रेरित किया। उदाहरण के लिए, लेखिका की पाठशाला के बाथरूम की दीवारों पर कुछ बाहरी बड़े लड़कों द्वारा अश्लील और फूहड़ चित्रकारी को लेखिका ने तब तक पेंट नहीं कराया जब तक कि स्वयं उनकी पाठशाला के बच्चे यह नहीं समझ गए कि बाथरूम की दीवारों पर लिखी हुईं टिप्पणियाँ, सही नहीं हैं। एक शिक्षक के नाते उस सीमा तक धैर्य रखने की आवश्यकता है, जब तक कि बच्चे यह नहीं समझ जाते कि रचनात्मकता का सही संदर्भ क्या है? यह पुस्तक प्रेरणा और कल्पनाशीलता का समृद्ध स्रोत है, जो यह बताने का प्रयास करती है कि बच्चों के मस्तिष्क की कल्पनाओं को धरातल पर उतारने के लिए रचनात्मकता से परिपूर्ण परिवेश प्रदान करने की आवश्यकता है, ताकि बच्चे अपनी रचनात्मकता का संपूर्ण उपयोग कर सकें। यह पुस्तक बच्चों के स्वयं करके सीखने के महत्व पर प्रकाश डालती है। उनकी रचनात्मकता एवं तर्कशक्ति को विकसित करने तथा शिक्षक की भूमिका के महत्व को भी प्रस्तुत करती है।